संस्कृति एवं शिक्षा :नई पीढ़ी के हस्तान्तरण में शिक्षा की भूमिका

सुशील कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग

शाह सत नाम जी कॉलेज ऑफ एजूकेशन सिरसा

सारांश :–

संस्कृति का सम्बन्ध व्यक्ति और समाज दोनों से होता है। जिस प्रकार व्यक्ति के मन में उसकी प्रकृति के अनुसार संस्कार उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार समाज के मन में भी संस्कार उत्पन्न होते हैं इन्हीं शुभ संस्कारों के समुच्चय को संस्कृति का नाम दिया जाता है। संस्कृति का सम्बन्ध हमारे जीवन–मूल्यों से होता है। यदि कोई व्यक्ति या समाज धर्म के अनुसार आचरण करता है तो उसके मन में जो संस्कार पड़ेगें वे शुभ कहे जायेंगे और वे हमारी संस्कृति का निर्माण करेंगें इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति या समाज अधर्म करता है तो उसके कार्य अशुभ संस्कारों का निर्माण करेंगें और हम उन्हें संस्कृति के भीतर शामिल नहीं करेंगें।

संस्कृति किसी देश के दर्शन परम्पराओं एवं विभिन्न कलाओं के विकास का प्राकल परिमाण होती है। देश के धर्म, साहित्य, मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों के संचय का नाम संस्कृति हैं किसी देश की उन्नति, अवनति, उत्थान, पतन, आचार विचार, ज्ञान, विज्ञान, एवं जीवन परिपाटी जानने के लिए उस देश की संस्कृति एक मुख्य साधन है। संस्कृति एक पुष्प के समान है जो मानव की क्रियाओं को सुगन्धित करती है। संस्कृति एक ऐसा फूल है जिसका निर्धारण आत्मा से होता है जिसमें सभी मानवीय क्रियाओं का सम्पादन किया जाता है। संस्कृति का मुख्य उद्वेश्य मनुष्य को पवित्र एवं परिष्कृत रूप देना है। संस्कृति हमारे अन्त:करण को शुद्ध एवं निर्मल करती है। यह सद्वगुणों की जननी है। संस्कृति मनुष्य के उच्चादर्शों की प्रतिष्ठा करती है। संस्कृति धर्मए कर्म एवं त्याग के नियम उद्वभूत करती है। किसी देश की संस्कृति का लक्ष्य उसके जन समुदाय के आचरण एवं आचार विचार के शुद्धिकरण का होता है। शारीरिक , मानसिक व आत्मिक शक्तियों का विकास संस्कृति का मुख्य उद्धेश्य हैं। संस्कृति, शब्द का वास्तविक अर्थ समझना नितान्त आवश्यक है। पर संस्कृति शब्द का वास्तविक अर्थ समझना, उसकी प्रकृति, विकृति, धर्म इत्यादि शब्दों से भेद स्थापित करना आदि आवश्यक है।

प्रकृति से यहॉ तात्पर्य स्वाभाविक अभिवृत्ति से है। प्रत्येक मनुष्य का एक विशिष्ट स्वभाव होता है जिसके अनुसार वह विचार करता है। भाव प्रकट करता है और क्रियाशील होता है। यही उसकी प्रकृति को निर्धारित

करता हैं उदारहण के लिए एक व्यक्ति की स्वाभाविक प्रकृति गणित पढ़ाने की है, दूसरे की विज्ञान पढ़ाने की तो तीसरे की दर्शन–शास्त्र के अनुशीलन की । यह सब प्रकृति–भेद है। जिस व्यक्ति की जैसी प्रकृति होती है,उसी के अनुसार उसके लिए विधान और कर्तव्य का निर्धारण किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति की प्रकृति कलाकार बनने की है तो उसी के अनुसार उसके लिए नियम और कर्तव्य का निर्धारण किया जाएगा।

जो बात एक व्यक्ति की प्रकृति के विषय में कही गयी है, वह किसी समाज या राष्ट्र पर भी उसी प्रकार लागू होती है सृष्टि की जबकि व्याख्या के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र की प्रकृति, विशष्ठिता और जीवन–ध्येय ईश्वरीय योजना के अनुसार ही हुए है। भारतीय समाजशास्त्र में यह स्वीकार किया गया है कि पृथ्वी पर प्रत्येक राष्ट्र या जाति–भगवान से कुछ विशेषता लेकन आती है। यह विशेषता उस राष्ट्र या जाति के प्रत्येक मनुष्य में अल्पाधिक मात्रा में विद्यमान रहती है। इसी राष्ट्रीय या जातिगत वशिष्ट्य या भावना को भारतीय वाऽमय में चिति कहा गया है। चिति राष्ट्रीय प्रकृति है जो राष्ट्र के प्रत्येक घटक मे सामान्य तत्व के रूप में रहती है। चिति राष्ट्र का केन्द्र बिन्दु है। सब तत्व इसके लिए पूरक होते है। चिति किसी राष्ट्र की आत्मा होती है जिसके साक्षात्कार पर ही प्रत्येक राष्ट्र के सुख की कल्पना निर्धारित की जाती है। संस्कृति शब्द की उत्पत्ति संस्कार से हुई है। जब मनुष्य या राष्ट्र अपनी प्रकृति या चिति के अनुसार कर्म करता है उसका उसके मन पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसी प्रभाव को संस्कार कहा जाता है। संस्कार अच्छा और बुरा दोनों हो सकता है। बुरे संस्कारों को हम संस्कृति के भीतर शामिल नहीं करते जब व्यक्ति या राष्ट्र धर्माचरण करता है तो उसमें शुभ परिणाम उत्पन्न होते है। इस प्रकार शुभ संस्कारों के परिणाम को संस्कृति कहते है। संस्कृति का सम्बन्ध व्यक्ति‍ा और समाज दोनों से होता है। जिस प्रकार व्यक्ति के मन में उसकी प्रकृति के अन प्रकार व्यक्ति के मन मेंउसकी प्रकृति के अनुसार संस्कार उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार समाज के मन में भी संस्कार उत्पन्न होते है इन्हीं शुभ संस्कारों के सपुच्चय को संस्कृति का नाम दिया जाता है। संस्कृति का सम्बन्ध हमारे जीवन–मूल्यों से होता है। संस्कृति किसी भी समाज की पहचान होती हैं यह व्यक्ति के रहन–सहन एवं खान पान की विधियों व्यवहार प्रतिमानों रीति–रिवाज, कला, कौशल, संगीत, नृत्य, भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, आर्दश, विश्वास, और मूल्यों के विशिष्ट रूप में जीवित रहती है तब किसी समाज की शिक्षा पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। शिक्षा का सम्बन्ध यद्यपि व्यक्ति और समाज दोनों से है पर इसका सम्बन्ध व्यक्ति की अपेक्षा समाज से अधिक है। व्यक्ति के बिना शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है पर समाज की कल्पना बिना शिक्षा के नहीं की जा सकती है पर समाज की कल्पना बिना शिक्षा के नहीं की जा सकती है। ऊपर हमने देखा कि प्रकृति और संस्कृति के बीच धर्म आता है। इसी

प्रकार धर्म और संस्कृति के बीच शिक्षा आती है। धर्माचरण संस्कृति को जन्म देता है, पर यह धर्माचरण कैसे किया जाए अथवा अपनी प्रकृति को किस प्रकार संस्कृ किया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर शिक्षा है। शिक्षा केवल व्यक्ति का ही परिष्कार नही करती बल्कि समाज को भी सुसंस्कृत करती है। शिक्षा संचित अनुभवों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरित कर नवीन पीढी को लाभान्वित करती है। कहा जाता है कि हम भूत के ऋण से तभी उऋण हो सकते है जब हम भविष्य को अपना ऋणी बनाएं। इसमें व्यक्ति की कर्तव्य–भावना निहित है। व्यक्ति भूत की ज्ञान–विधि को भविष्य तक पहुॅचाने वाला अभिकर्ता मात्र है। यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति स्वाध्याय द्वारा स्वयं को सुशिक्षित कर इस योग्य बनाए कि वह समाज को भी सुशिक्षित कर सके।

किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था किस प्रकार की होगी यह पता हमें उसकी सामाजिक दशा को देखकर लग जाता है। समाज किसी भी भू–भाग का हो वह उसकी शिक्षा के स्तर का ही जीता जागता स्वरूप है। हमारे प्राचीन मुनि ऋषि पूर्वजों आदि द्वारा भारतीय परम्परा के आधार पर बताया मार्ग संस्कृति का द्योतक हैं। भविष्य का निर्माण भूत पर आश्रित होता है । इस प्रकार संस्कृति मानव का मार्गदर्शन करती है। सुसंस्कृत होने के लिए संस्कृति द्वारा निर्देशित शिक्षा के उद्धेश्य एवं पाठ्यक्रम का निर्धारण होना अतिआवश्यक है। शिक्षा में संस्कृति से प्रेरणा लिया जाा आवश्यक है। शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती है। अनुकूलन प्रदान करती है। शिक्षा सांस्कृतिक विकास का प्रमुख साधन हैं

शिक्षा एक व्यापक प्रक्रिया है जिसे मात्र किसी कौशल या कार्य के निस्पादन तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों की आन्तरिक क्षमताओं का विकास करने के साथ–साथ ही उनके व्यक्तित्व को सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी बनने का प्रयत्न किया जा सकता है। व्यक्ति में मानवता का बौद्ध व सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करना शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। व्यापक सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि शशिक्षा वह शैक्षिक आयोजन है जिसमें विद्याथिर्यों को इस तरह शिक्षित किया जा सकता है कि वह ज्ञान व मूल्यों के हस्तातरण के साथ–साथ शैक्षित व विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण व वहन करने में सक्षम हो सकें। शिक्षा ही वह सशक्त उपागम है। जिसके द्वारा विभिन्न संस्कारों के माध्यम से अपने शरीर, मन, आत्मा का समन्वित विकास कर समाज एवं राष्ट्र का योग्य नागरिक बनाती हैं मानव जाति के शाश्वत मूल्य, अपरिगृह, अंहिंसा, सेवा, त्याग, प्रेम, करूणा, सहानुभुति, सहिष्णुता, और सांमजस्य जैसे गुणों का विकास भारतीय शिक्षा में इन्हें संजोए रखने से हुआ है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है। जिसके द्वारा समाज के मूल्यों, नैतिकता, संस्कारों एवं रीति–रिवाजों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित किया जा सकता है। नयीं पीढ़ी को हमारी संस्कृति के अनुरूप ढ़ालने तथा समाज सम्मत व्यवहार करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

हमारी सांस्कृतिक विकास की विशेषताएँ आध्यात्मिक क्षेत्रों जैसे वेद, उपनिषदों, ऋषियों कवियों विभिन्न रीति–रिवाजों के रूप में देखी जा सकती है जिसके कारण सम्पूर्ण राष्ट्र की अखण्ड़ता दृश्यमान है। इस अखण्ड़ता को मजबूत व एकसूत्र में बाँधने की दिशा मं सतत् प्रयत्न होते रहे है। वर्तमान भारतीय शिक्षा द्वारा आगामी पीढ़ियों को इन विशेषताओं से परिचित कराने की आवश्यकता है जिससे उनमे इस भारतीय संस्कृति की विरासत के प्रति स्नेह और एकता बनी रहें। शिक्षा संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती है उसका संरक्षण करती है। और युवा पीढी को सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान कराती हैं शिक्षा संस्कृति में सुधार लाती है। परिवर्तन करती है और आवश्यकतानुसार संशोधन करती है। किसी स्थान की संस्कृति उनकी युग–युग की साधना का परिणाम होती है। इसके प्रति विशेष लगाव होता है। इसे सुरक्षित रखने में शिक्षा सहायक की भूमिका निभाती हैं वैज्ञानिक आविष्कारों , औद्योगीकरण, नगरीयकरण एवं तीव्र सामाजिक परितर्वन ने भारतीयों के जीवन को बदल दिया है। परन्तु आज भी हमारी आस्था अपनी संस्कृति, भाषा, साहित्य में बनी हुई है। हमारे आदर्श विश्वास और मूल्य वही है जो हमारी संस्कृति की वाहिका है वह केवल संस्कृति की परम्परागत अवधारणाओं को आगे की पीढ़ी को हस्तान्तरित ही नहीं करती वरन् उनको समय के अनुरूप नये रूप में ढ़ालकर उसे नये युग को देती है। इस प्रकार शिक्षा वर्तमान के माध्यम से भूतकाल और भविष्यकाल के मध्य सेतु का कार्य करती हैं प्रत्येक राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपने साहित्य और अपने दश्रन के बल पर जीात है और अपने राष्ट्रीय लक्षणों को संरक्षित रखता है। यद्यपि समय के साथ प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के उच्चादर्शों को आज के समय मे ज्यों का त्यों नहीं रखा जा सकता तो शिक्षा उसमें युग के अनुरूप परिवर्तित करके उसका नवीनीकरण करने में सहायक होती है। वर्तमान समय मे आदर्श सांस्कृतिक विरासत जो अक्षुण्ठा रखी जाने योग्य है उन्हें शिक्षा द्वारा जाग्रत रखा जा सकता हैं

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

ब्रेमेल्डए पियोडोट १९७५ शिक्षा की दार्शनिक प्रणालियाँ परिपेक्ष्य में राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी एजयपुर।
भारतीय शिक्षा आयोग १९६४ – ६६, पृ. १– २६
केनोपनिषद् – अनुवादरू श्री अरविन्द, १९५२। श्री अरविन्द आश्रम पांडिचेरी –शर्मा ऑटवे ब्रज भूषण, १९७२, शिक्षा और समाज उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ए लखनऊ।
शर्मा ए शंकर दयाल २००२संस्कृति और शिक्षा डॉ. शंकर दयाल शर्मा पंकज पुस्तक मन्दिर ७७१ ईस्ट आजाद नगर ए दिल्ली ११००५१ ।